इकाई 3 उपन्यास : वर्गीकरण और उसके विभिन्न आधार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 उपन्यास की रचना क्यों : वर्गीकरण के आधार
3.3 रचना का उद्देश्य
  3.3.1 राजनीतिक उद्देश्य
  3.3.2 सामाजिक उद्देश्य
  3.3.3 सांस्कृतिक उद्देश्य
  3.3.4 साहित्यिक उद्देश्य
3.4 कथावस्तु का स्वरूप
  3.4.1 घटना-प्रधान कथावस्तु
  3.4.2 सामाजिक कथावस्तु
  3.4.3 आँचलिक कथावस्तु
  3.4.4 ऐतिहासिक कथावस्तु
  3.4.5 मनोवैज्ञानिक कथावस्तु
3.5 चरित्रों के आधार पर
  3.5.1. सामाजिक चरित्र
  3.5.2. वैयक्तिक चरित्र
  3.5.3. प्रातिनिधिक चरित्र
  3.5.4. प्रतीकात्मक चरित्र
  3.5.5. मिथकीय चरित्र
3.6 शैली के आधार पर
  3.6.1 वर्णनात्मक शैली
  3.6.2 व्यंग्यात्मक शैली
  3.6.3 आत्मकथात्मक शैली
  3.6.4 जीवनीपरक शैली
  3.6.5 रूपक प्रधान शैली
3.7 जीवन दृष्टि के आधार पर
  3.7.1 भाववादी-आदर्शवादी दृष्टि
  3.7.2 यथार्थवादी दृष्टि
  3.7.3 आधुनिकतावादी और उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टि
3.8 सारांश

3.0 उद्देश्य

एम ए हिंदी से संबंधित पाठ्यक्रम एम एच डी-13 'उपन्यास : स्वरूप और विकास' के दूसरे खंड 'उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-2' की तीसरी इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई का शीर्षक है :'उपन्यास – वर्गीकरण और उसके विभिन्न आधार'। इस इकाई में आप उपन्यास की रचना के वर्गीकरण के विभिन्न आधारों पर विचार करेंगे। उपन्यास के वर्गीकरण के जिन आधारों की इस इकाई में चर्चा की गई है उनमें उपन्यास रचना के उद्देश्य के आधार पर, कथावस्तु के स्वरूप के आधार पर, चरित्रों के आधार पर, शैली के आधार पर और जीवन दृष्टि के आधार पर प्रमुख हैं। उपन्यासों का वर्गीकरण करने का मकसद उपन्यास विधा की विविधता और बहुलता को समझना है। उपन्यास विधा में रचनात्मक संभावनाएँ कितनी अधिक हैं, इसे आप इस इकाई के अध्ययन से समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

एम एच डी-13 के दूसरे खंड की तीसरी इकाई में आप उपन्यासों के वर्गीकरण के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पहले की इकाई में आपने उपन्यास की भाषा के बारे में

विस्तार से अध्ययन किया था। उपन्यास की भाषा के बारे में विचार करते हुए हमने गद्य और पद्य के अंतर को समझा था और यह भी समझने का प्रयास किया था कि उपन्यास की भाषा में अन्य साहित्यिक विधाओं की विशेषताएँ किस तरह अंतर्निहित होती हैं। इस इकाई का उद्देश्य उपन्यास विधा के विभिन्न वर्गीकरणों को समझना है। अब तक के अपने अध्ययन के दौरान आप ऐतिहासिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, आंचलिक उपन्यास जैसे पदों का उपयोग देखा होगा। आपके मन में यह स्वाभाविक सवाल उपजा होगा कि इन पदों का उपयोग क्यों किया जा रहा है और इसका आधार क्या है। मसलन आँचलिक उपन्यास कहा जा रहा है तो गैर आँचलिक उपन्यास भी होते होंगे। यदि सामाजिक उपन्यास होते हैं तो क्या राजनीतिक उपन्यास भी होते हैं या हो सकते हैं। दूसरा सवाल यह भी पैदा होता है कि उपन्यासों के वर्गीकरण के अध्ययन की आवश्यकता क्यों है। क्या इससे उपन्यास के आस्वादन में मदद मिलती है? क्या इससे उपन्यास को समझने में मदद मिलती है? इस खंड की चौथी इकाई में हम उपन्यास की आलोचना संबंधी दृष्टियों पर विचार करेंगे। इस इकाई का अध्ययन करते हुए आप पाएँगे कि उपन्यास के सैद्धांतिक पक्षों का अब तक आपने जो अध्ययन किया है, उसका प्रयोग उपन्यास की आलोचना संबंधी दृष्टियों के अध्ययन में किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन का एक अन्य पक्ष यह है कि इससे आपको भिन्न-भिन्न तरह के उपन्यासों के बीच के अंतर को समझने में और उनमें परस्पर एकता के आधारों को समझने में मदद मिलेगी। उपन्यासों के वर्गीकरण के विभिन्न आधारों की चर्चा का यह तात्पर्य नहीं है कि एक उपन्यास एक ही ढंग से वर्गीकृत किया जा सकता है। एक उपन्यास शैली के आधार पर एक ढंग से, जीवन दृष्टि के आधार पर दूसरे ढंग से, कथावस्तु के आधार पर तीसरे ढंग से, पात्रों के आधार पर चौथे ढंग से और उद्देश्य के आधार पर पाँचवें ढंग से विभाजित किथा जा सकता है। उपन्यासों के वर्गीकरण के इस अध्ययन से आपको उपन्यास की विशेषताओं को समझने में भी मदद मिलेगी।

3.2 उपन्यास की रचना क्यों : वर्गीकरण के आधार

कोई साहित्यकार उपन्यास क्यों लिखता है? क्या सभी उपन्यासकार एक ही उद्देश्य से प्रेरित होकर उपन्यास लिखते हैं। क्या प्रेमचंद, अज्ञेय, यशपाल, कृष्णा सोबती, ओमप्रकाश वाल्मीकि के लेखन का एक ही उद्देश्य है। ग्रामीण जीवन पर आधारित होते हुए भी 'गादोन' को आँचलिक उपन्यास क्यों नहीं कहा जाता। 'झूठा सच' के मध्यवर्ग और 'नदी के द्वीप' के मध्यवर्ग में क्या अंतर है? 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आत्मकथात्मक शैली में क्यों लिखा और 'शेखर : एक जीवनी' को अज्ञेय ने जीवनीपरक शैली में क्यों लिखा? ऐसे बहुत सारे सवाल उपन्यास के संदर्भ में उठते हैं, उठाए जा सकते हैं।

उपन्यास की रचना बिना किसी उद्देश्य के कोई लेखक नहीं करता और सभी उपन्यासकार एक उद्देश्य से प्रेरित होकर उपन्यास नहीं लिखते। यदि उद्देश्य अलग-अलग हैं तो उपन्यास की रचना पर उसका प्रभाव भी अलग-अलग रूपों में दिखाई देगा। उद्देश्य के आधार पर ही लेखक कथावस्तु का चयन करता है। दरअसल, रचनाकार का उद्देश्य अप्रत्यक्ष रूप से, यथार्थ को कथावस्तु में रूपांतरित करने में सहायक होता है। प्रत्येक रचनाकार यथार्थ को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखता है। वह यथार्थ के किस पहलू को महत्वपूर्ण और रचना में शामिल करने के योग्य मानता है, यह उसकी जीवन-दृष्टि और रचना-दृष्टि पर निर्भर करता है। 'गोदान' में होरी द्वारा गाय खरीदने और उस गाय को उसी के भाई हीरा द्वारा जहर दिए जाने की घटना अत्यंत महत्वपूर्ण होते हुए भी केंद्रीय महत्व हासिल नहीं करती। लेकिन कोई अन्य रचनाकार जो 'गोदान' की कथा को भाई-भाई के पारस्परिक संबंध की कथा के रूप में

चित्रित करना चाहता है, इसे केंद्रीय कथा बना सकता था, लेकिन तब 'गोदान' किसान जीवन का महाकाव्य नहीं बनता।

उपन्यास का नायक कौन हो, यह प्रश्न भी बराबर उठता रहा है। लेकिन प्रेमचंद जैसे लेखकों ने आरंभ में ही इस समस्या को काफी हद तक सुलझा लिया था। प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' नायक नहीं नायिका प्रधान है, वह भी एक वैश्या। सुमन कोई आदर्श नायिका नहीं है। बाद में 'निर्मला' की निर्मला भी साधारण स्त्री है। 'प्रेमाश्रम' नायक नहीं खलनायक प्रधान उपन्यास है। उसका केंद्रीय चरित्र ज्ञानशंकर है जो एक बुरा ज़मींदार है। 'रंगभूमि' का नायक सूरदास मामूली अंधा भिखारी है, लेकिन रचनाकार ने उसे जो चारित्रिक उत्कर्षता प्रदान की है, वह उसे गांधी के समकक्ष बना देती है। 'गोदान' के होरी में तो वह तेजस्विता और संघर्ष क्षमता भी नहीं है जो सूरदास में है। इसके बावजूद होरी प्रेमचंद के अमर चरित्रों में सिरमौर है। उपन्यास विधा में चरित्रों की विविधता और साधारणता बाधक नहीं बनती। यह रचनाकार पर निर्भर करता है कि उपन्यास में अपने पात्रों को कितना जीवंत और ऊर्जावान, बनाकर प्रस्तुत करता है।

जिस प्रकार उपन्यास की कथावस्तु जीवन के किसी भी पक्ष से संबंधित हो सकती है, उसी प्रकार चरित्र भी कई प्रकार के हो सकते हैं।

उपन्यास लिखने के लिए उपन्यासकार किसी भी तरह की शैली अपना सकता है। वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक, जीवनीपरक व्यंग्यात्मक, रूपक प्रधान आदि। एक ही उपन्यास में रचनाकार एक से अधिक शैलियों का उपयोग कर सकता है और किसी नई शैली का प्रयोग कर सकता है। विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में शैली के नए प्रयोगों को देखा जा सकता है। ज़ाहिर है कि शैली का चयन रचनाकार अपने उपन्यास की कथावस्तु और उद्देश्य को ध्यान मे रखकर ही करेगा। यदि उपन्यासकार की दृष्टि में उपन्यास के उद्देश्य और कथ्य से अधिक महत्व शैली का होगा तो वह ऐसी शैली और भाषा का उपन्यास में प्रयोग करेगा जिससे उपन्यास में कलात्मक नवीनता उत्पन्न हो। कई बार ऐसी कोशिशें उपन्यास के कथ्य से मेल नहीं खाती और उसमें दरार पड़ जाती है। यह दरार उपन्यास के कुल प्रभाव को क्षीण करती है।

उपन्यास के वर्गीकरण को अंतिम रूप से प्रभावित करती है लेखक की जीवन दृष्टि। लेखक की कला दृष्टि इसी जीवन-दृष्टि का अंग होती है। उपन्यासकार यथार्थवादी है या आधुनिकतावादी या उत्तर आधुनिकतावादी, उसी के अनुसार वह उपन्यास के उद्देश्य, कथ्य और शैली का चयन करता है। आजकल ऐसे रचनाकार भी सामने आ रहे हैं जो न तो यथार्थवादी हैं न आधुनिकतावादी। उनमें से कुछ उत्तर आधुनिकतावादी होने का दावा करते हैं, लेकिन उनकी जीवन दृष्टि परंपरावादी और प्रतिगामी हो सकती है। भारतीयता के नाम पर वे अतीत को ही पुनर्स्थापित करने की कोशिश करते हैं। भारतीय उपन्यास परंपरा में ऐसे लेखक अभी हाशिए पर ही हैं। लेकिन वर्तमान राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक माहौल में ऐसे लेखक रचनात्मक परिवेश पर हावी हो सकते हैं। उपन्यासों के विकास और वर्गीकरण पर विचार करते हए इस बात को समझना आवश्यक है।

3.3 रचना का उद्देश्य

उपन्यास एक साहित्य विधा है। लेखक किसी भी उद्देश्य से प्रेरित होकर उपन्यास क्यों न लिखे, अंततः उस रचना को उपन्यास होना आवश्यक है। उपन्यास के रूप में उसके मूल्यांकन का आधार उसका 'उपन्यासत्व' है। उपन्यास में उपन्यासत्व क्या है? क्या वह कथावस्तु, पात्र, परिवेश, शैली, भाषा से भिन्न कहीं और विद्यमान होता है? उपन्यास के उद्देश्य का उपन्यासत्व से क्या संबंध है? 'गोदान' की सार्थकता उसके उपन्यास होने में है

या किसान जीवन का महाकाव्य होने में? 'गोदान' जो उपन्यास है, महाकाव्य नहीं, वह उपन्यास महाकाव्य होकर श्रेष्ठ क्यों है? क्या उपन्यास में महाकाव्यत्व उसकी श्रेष्ठता का आधार है? यदि 'मैला आँचल' में महाकाव्य का गुण नहीं है, तो क्या वह श्रेष्ठ नहीं है? यदि वह भी श्रेष्ठ उपन्यास है तो उसकी श्रेष्ठता किसमें निहित है, क्या उसकी आँचलिकता में? लेकिन क्या सभी आँचलिक उपन्यास इसी वजह से श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं? ज़ाहिर है नहीं। उपन्यास के लिए उपन्यास होना पहली शर्त हो सकता है, लेकिन अकेली शर्त नहीं। उपन्यासत्व के आधार पर सिर्फ यह तय होता है कि रचना उपन्यास बन गई है, लेकिन यह उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं बनती। श्रेष्ठता अन्य बातों पर भी निर्भर करती है। उद्देश्य इनमें प्रमुख है। कोई भी श्रेष्ठ रचनाकार महज रचना के लिए रचना नहीं करता, उपन्यास लिखने के लिए उपन्यास नहीं लिखता। उपन्यास लिखने का उसका उद्देश्य कुछ ओर होगा–राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि।

3.3.1 राजनीतिक उद्देश्य

वैसे तो प्रत्येक उपन्यास राजनीतिक होता है लेकिन यहाँ राजनीतिक उपन्यास सिर्फ उन्हें कहा गया है जिसमें राजनीतिक घटनाओं और राजनीति से जुड़े लोगों के जीवन को कथा का आधार बनाया गया है। राजनीतिक जीवन को कथा का हिस्सा बनाने की परंपरा हिंदी में बहुत पहले से है। प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' से लेकर 'गोदान' तक सभी उपन्यासों में राजनीति संबंधी घटनाओं का विवरण उनके उपन्यासों में मिलता है। प्रेमचंद के बाद के प्रायः सभी प्रमुख लेखक यशपाल, नागार्जुन, रेणु, रांगेय राघव, भीष्म साहनी, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी आदि के उपन्यासों में राजनीतिक परिदृश्यों का विस्तार से चित्रण मिलता है। लेकिन राजेंद्र यादव के 'उखड़े हुए लोग', मन्नू भंडारी के 'महाभोज' में राजनीति कथा के केंद्र में है इसलिए इन्हें राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है।

राजनीतिक उपन्यासों का तात्पर्य यह नहीं है कि उपन्यास में किसी खास राजनीति का समर्थन या विरोध किया गया है और न ही इसका तात्पर्य यह है कि इन उपन्यासों का मकसद किसी खास राजनीतिक पार्टी या नज़रिए का प्रचार करना है। यदि किसी उपन्यास में ऐसा किया गया है तो उसका प्रभाव सतही होगा और साहित्यिक दृष्टि से ऐसा उपन्यास अधिक मूल्यवान नहीं होगा।

3.3.2 सामाजिक उद्देश्य

सामाजिक उद्देश्य को प्रधानता से चित्रित करने वाले उपन्यासों को सामाजिक उपन्यासों के रूप में भी जाना जाता है। सामाजिक का तात्पर्य समाज से संबंधित समस्याओं और मसलों को कथावस्तु का आधार बनाने वाले उपन्यासों से है। मसलन, प्रेमचंद का उपन्यास 'निर्मला' अनमेल विवाह की समस्या को केंद्र में रखकर लिखा गया है इसलिए इसे सामाजिक उपन्यास कहा जा सकता है। 'सेवासदन' में वैश्या उन्मूलन के मुद्दे को कथा का विषय बनाया गया है। इसी तरह प्रेमचंद की बाद की पीढ़ी के उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक विषयवस्तु को केंद्र में रखकर सामाजिक समस्याओं के प्रति पाठकों को जागरूक बनाने का प्रयत्न किया है। सामाजिक प्रश्न वैसे तो प्रत्येक उपन्यास में अवश्य अभिव्यक्त होते हैं। यही नहीं कोई भी उपन्यास सिर्फ एक ही समस्या को केंद्र में रखकर लिखा जाए, यह ज़रूरी नहीं है। मन्नू भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी' तलाक और पुनर्विवाह की समस्या को केंद्र में रखकर लिखा गया है लेकिन इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों और एकल परिवार की आंतरिक समस्याओं को भी कथा का विषय बनाया गया है।

किसी समस्या को कथा के केंद्र में रखने का तात्पर्य यह नहीं है कि उपन्यासकार ने उस समस्या के समग्र पहलुओं को उपन्यास में प्रस्तुत कर दिया है और न ही इसका तात्पर्य यह है कि उसमें समस्या के बारे में प्रगतिशील नज़रिया अपनाया गया है। यह तो पाठकों पर निर्भर करता है कि वह उपन्यास की कथावस्तु और उससे निःसृत होने वाले नज़रिए को

किस रूप में ग्रहण करता है। लेकिन यह कहना ज़रूरी है कि प्रत्येक युग का रचनाकार अपने युग की सामाजिक समस्याओं और प्रश्नों के प्रति उपेक्षा का भाव नहीं रख सकता। वह उसे उपन्यास में अवश्य स्थान देता है।

वे उपन्यास भी सामाजिक उपन्यास की श्रेणी में गिने जा सकते हैं जिसमें समाज और व्यक्ति के बीच के अंतर्द्वंद्वों को कथा का विषय बनाया गया हे। अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' में कथा की मूल समस्या यही है। आधुनिक रचनाकारों के सामने यह ज्वलंत प्रश्न रहा है कि समाज में व्यक्ति का स्थान क्या है और व्यक्ति-स्वातंत्र्य और सामाजिक दायित्व के बीच किस तरह का संतुलन आवश्यक है। इसी तरह वर्तमान समय में स्त्री स्वातंत्र्य, दलित उत्थान और अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा का प्रश्न सामाजिक जीवन के केंद्र में है और हिंदी सहित अन्य भाषाओं के लेखकों ने अपने उपन्यासों में इन विषयों को उठाया है। सामाजिक जीवन में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं और उन परिवर्तनों को हम उस दौर के प्रतिनिधि उपन्यासों के माध्यम से पहचान सकते हैं।

3.3.3 सांस्कृतिक उद्देश्य

साहित्य रचना स्वयं एक सांस्कृतिक कर्म है लेकिन समाज के सांस्कृतिक जीवन को भी उपन्यास का विषय बनाया जा सकता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की कथावस्तु में सामाजिक जीवन के साथ-साथ सांस्कृतिक जीवन की भी पर्याप्त झलक मिलती है। सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन अलग-अलग नहीं किए जा सकते, लेकिन जहाँ सांस्कृतिक जीवन प्रधानता के साथ प्रस्तुत हो तो वहाँ हम उपन्यास को संस्कृति प्रधान उपन्यास कह सकते हैं। सांस्कृतिक जीवन को व्यक्त करने के लिए उपन्यासकार किसी संस्कृतिकर्मी को नायक के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। मसलन किसी कवि, गायक, संगीतकार, चित्रकार, शिल्पी के जीवन पर। रांगेय राघव ने कई हिंदी कवियों के जीवन को आधार बनाकर उपन्यास लिखे। रांगेय राघव के उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' नट जाति के आदिवासियों की जीवनगाथा है। इस उपन्यास में उनके सामाजिक जीवन के साथ-साथ सांस्कृतिक जीवन को भी प्रधानता के साथ चित्रित किया गया है। शिक्षा, खेलकूद आदि से संबंधित उपन्यास भी हमारे सांस्कृतिक जीवन की ही झलक प्रस्तुत करते हैं। आँचलिक उपन्यासकार भी अँचल विशेष के सांस्कृतिक जीवन को प्रमुखता के साथ चित्रित करते हैं। आँचलिकता का लालित्य सांस्कृतिक जीवन के चित्रण के बिना उभर ही नहीं सकता। वैसे भी जीवन का यथार्थ जीवन के समग्र चित्रण से ही सामने आता है। संस्कृति समग्रता का अनिवार्य हिस्सा है।

3.3.4 साहित्यिक उद्देश्य

उपन्यास का लेखन सिर्फ साहित्यिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए करने का चलन हिंदी मे नहीं है। 'कला, कला के लिए' के उपासक हिंदी में खोजने पर भी शायद ही मिलें। कई बार आधुनिकतावादी, व्यक्तिवादी रचनाकारों को कलावादी समझने की भूल कर दी जाती है। यह संभव है कि कुछ उपन्यासकार रचना में कला पक्ष पर अधिक बल देते हों, लेकिन इसी कारण उन्हें कलावादी कहना या उनकी रचनाओं को कलावादी मानना तर्कसंगत नहीं है। विनोद कुमार शुक्ल, कृष्ण बलदेव वैद जैसे उपन्यासकारों ने उपन्यासों में प्रयोगधर्मिता पर बल दिया है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि वे सिर्फ साहित्यिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपन्यास लिखते हैं। यह अवश्य माना जा सकता है कि उनके सभी प्रयोग कामयाब नहीं हुए हैं।

साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास नवीन विधा होते हुए भी इसकी रचना परंपरा में लगातार नवीनीकरण की ज़रूरत होती है। हिंदी में उपन्यास लेखन की परंपरा मुश्किल से लगभग 130 साल पुरानी है और सोद्देश्यपरक और साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट उपन्यासों की रचना को तो अभी आरंभ हुए सौ साल भी पूरे नहीं हुए हैं लेकिन उपन्यास

विधा में लगातार नए प्रयोग होते रहे हैं। इन परिवर्तनों के कारण ही हिंदी उपन्यास परंपरा में लगातार ऐसी कृतियाँ सामने आती रही हैं जो साहित्यिक दृष्टि से भी उल्लेखनीय मानी जा सकती हैं।

3.4 कथावस्तु का स्वरूप

उपन्यास में कथावस्तु अवश्य होती है। यह और बात है कि प्रत्येक उपन्यास में कथावस्तु अलग-अलग होती है। यही नहीं आरंभिक उपन्यासों में कथावस्तु के नाम पर घटनाओं का बाहुल्य रहता था, लेकिन अब कथावस्तु अधिक सूक्ष्म होती है। श्रेष्ठ उपन्यास वही होता है जिसकी कथावस्तु का वर्णन करना कठिन काम हो। इसकी वजह यह है कि अब कथावस्तु में बल घटनाओं पर नहीं बल्कि उन स्थितियों, मनोभावों, आंतरिक द्वंद्वों और संघर्षों पर होता है जिसकी परणति किसी घटना में निकल सकती है। यही कारण है कि उपन्यासकार अब घटनाओं के स्थूल वर्णन पर केंद्रित उपन्यास नहीं लिखता। किसी ज़माने में 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' जैसे घटना बाहुल्य उपन्यास इसीलिए पढ़े जाते थे लेकिन अब ऐसे उपन्यासों को पढ़ना साहित्यिक अभिरुचि में शामिल नहीं किया जाता।

उपन्यास की कथावस्तु कई तरह की हो सकती है, सामाजिक, आँचलिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि। कथावस्तु के आधार पर उपन्यासों के वर्गीकरण पर विचार आगे किया जा रहा है।

3.4.1 घटना-प्रधान कथावस्तु

घटना प्रधान उपन्यास उपन्यासों का कथावस्तु एक महत्वपूर्ण प्रकार है, भले ही आज ऐसे उपन्यासों को साहित्यिक श्रेणी में नहीं गिना जाता। जासूसी, ऐयारी, तिलस्मी आदि कथानकों पर आधारित रहस्य और रोमांच से भरपूर उपन्यास घटना प्रधान उपन्यास होते हैं और इनके पाठक आज भी बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं, विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में लोकप्रिय उपन्यासों की यह श्रेणी अवश्य मिलती है। इन उपन्यासों में घटनाओं में निहित रोमांच और लगातार पैदा होने वाली उत्सुकता पाठकों को अपनी तरफ आकृष्ट करती है। ऐसे उपन्यासों में न तो चरित्र महत्वपूर्ण होते हैं और न ही उपन्यास का शिल्प। उपन्यासकार की सफलता इसी बात में मानी जाती है कि वह ऐसी कथा निर्मित कर सका, जिसे पढ़ते हुए पाठक उससे बंध रह सका। पाठक हर पल, हर क्षण यही सोचता है कि 'आगे क्या होगा'। किसी ज़माने में अंग्रेजी में आर्थर कानन डायल के उपन्यासों के प्रति पाठकों में ऐसी ही उत्सुकता थी, या हिंदी में देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति', 'भूतनाथ' आदि ने भी पाठकों में ऐसी ही गहरी अभिरुचि जगाई थी। घटना-प्रधान उपन्यासों का उद्देश्य पाठकों का मन बहलाव करना होता है। ऐसे उपन्यासकार किसी महत् उद्देश्य से प्रेरित होकर उपन्यास की रचना नहीं करते। इनके उपन्यासों में तेजी से चलने वाली घटनाएँ, पात्रों के सामने लगातार आने वाले खतरे और उनसे जूझने का उनका साहस और अंत में असंभव को संभव कर दिखाने का जादुई चमत्कार पाठकों को सम्मोहित किए रहता है। इस तरह के उपन्यास पाठक आराम के क्षणों में, यात्रा के दौरान पढ़ता है। इस तरह के उपन्यास उनकी शारीरिक और मानसिक थकान को मिटाते हैं। इस तरह के उपन्यासों के लेखन में भी रोचक कथा का निर्माण करना, पात्रों को प्रभावशाली बनाना, भाषा-शैली को कथा के अनुसार संप्रेष्य और प्रवाहपूर्ण बनाना आवश्यक होता है। भले ही ऐसे उपन्यास साहित्यिक श्रेणी में न माने जाते हों, लेकिन रचनात्मक और लेखन कौशल की आवश्यकता घटना-प्रधान उपन्यास लिखने वालों के लिए भी ज़रूरी है।

3.4.2 सामाजिक कथावस्तु

सामाजिक उपन्यासों की यह श्रेणी वही है जिसका उल्लेख हम 3.3.2 में कर चुके हैं। सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित उपन्यास की कथावस्तु भी सामाजिक होगी। वैसे तो कोई भी उपन्यास ऐसा नहीं होता जिसमें सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति न हो। सामाजिक

उपन्यासों में समाज के किसी भी पहलू या मसले को विषय बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए मोहन राकेश के उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' में दिल्ली जैसे महानगर में रहने वाले एक परिवार की कहानी कही गई है जहाँ पति-पत्नी के बीच के तनाव को कथावस्तु का विषय बनाया गया है। यह एक सामाजिक मसला है। इसी प्रकार राजेंद्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' में छोटे शहर के कस्बाई वातावरण में रहने वाले युवक-युवती के जीवन की परेशानियों और उसके बीच पलने वाले सपनों और आकांक्षाओं को कथा का विषय बनाया गया है। भीष्म साहनी ने 'तमस' में देश के विभाजन के समय पैदा हुए सांप्रदायिक तनाव को कथा का विषय बनाया है। ये सभी उपन्यास किसी न किसी सामाजिक मसले को कथा के केंद्र में रखते हैं।

सामाजिक जीवन में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। श्रद्धाराम फिल्लौरी के उपन्यास 'भाग्यवती' की रचना के समय स्त्रियों की शिक्षा एक मुख्य मुद्दा था, इसलिए श्रद्धाराम फिल्लौरी ने अपने उपन्यास का विषय स्त्री-शिक्षा को बनाया। प्रेमचंद के समय में स्त्री शिक्षा से आगे स्त्रियों के जीवन की अन्य समस्याएँ जैसे वैश्या उन्मूलन, अनमेल विवाह, स्त्री स्वातन्त्र्य आदि कई मुद्दे कथा के केंद्र में आ गए। बाद में स्वयं लेखिकाएँ भी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अग्रसर हुई। उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, गीतांजली श्री आदि लेखिकाओं ने स्त्रियों के जीवन का अधिक सूक्ष्मता और गहनता से चित्रण किया। स्त्रियों की तरह दलित जीवन भी उपन्यास के प्रमुख विषयों में शामिल हुआ। मराठी साहित्य में तो दलित लेखन साहित्य के केंद्र में आ गया। आत्मकथात्मक उपन्यासों ने दलित जीवन को नए नज़रिए से पेश किया।

कई बार सामाजिक उपन्यासों से तात्पर्य उन लोकप्रिय उपन्यासों से भी ले लिया जाता है जो रेलवे के बुक स्टालों पर बिकते हैं। सतही रोमानी कथाओं को केंद्र बनाकर लिख गए इन उपन्यासों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति तो होती है, लेकिन उनमें न तो सामाजिक यर्थाथ होता है और न ही औपन्यासिक कलात्मकता। ये उपन्यासों में विकृत अभिरुचि को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। ये पाठकों को न तो समाज के बारे में जागरूक बनाते हैं और न ही उन्हें वैचारिक रूप से उद्वेलित करते हैं। ये उन पापुलर फिल्मों की तरह हैं जिनका मकसद क्षणिक मनवहलाव है।

3.4.3 आँचलिक कथावस्तु

किसी भी तरह का उपन्यास क्यो न हो, घटना प्रधान हो, चाहे सामाजिक हो, और चाहे जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर लिखा गया हो, उसमें विशेष देश और काल का वर्णन ज़रूर होता है। देशकाल को ही परिवेश भी कहा जाता है। श्रेष्ठ उपन्यासकार अपने उपन्यास में परिवेश के चित्रण पर विशेष बल देते हैं। लेकिन जिन उपन्यासों में परिवेश चित्रण कथा के केंद्र में होता है, ऐसे उपन्यास को आँचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है। यह समझने की भूल की जाती है कि आँचलिक उपन्यास का संबंध सिर्फ गाँवों से होता है, लेकिन यह सच नहीं है। ऐसी भूल का कारण रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' की लोकप्रियता है। लेकिन गाँवों से इतर जीवन पर लिखे गए उपन्यासों को भी आँचलिक कहा जा सकता है। अमृतलाल नागर के उपन्यास 'बूँद और समुद्र' जिसमें लखनऊ का वर्णन है, आँचलिकता की श्रेणी में आ सकता है। इसी प्रकार रांगेय राघव का उपन्यास 'कब तक पुकारूँ', उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य', कृष्णा सोबती का 'ज़िंदगीनामा', जगदीशचंद्र का 'धरती धन न अपना', मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' और 'अल्मा कबूतरी'। इन सब उपन्यासों में अँचल विशेष की कथा कही गई है और ये सभी ग्रामीण जीवन से संबंधित नहीं हैं। इनमें गाँव हैं, शहर हैं, कस्बे हैं, यहाँ तक कि महानगर को भी उपन्यासों में अँचल की तरह प्रस्तुत किया गया है। आँचलिक उपन्यास से तात्पर्य यही है कि उस उपन्यास में कथा उस अँचल के संपूर्ण परिवेश पर आधारित होती है। अँचल विशेष की परंपरा, रीति-रिवाज़, तीज-त्यौहार, लोग-बाग, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के समग्र पहलू को ऐसे उपन्यासों की

कथावस्तु का विषय बनाया जाता है। यहाँ कई कहानियाँ एक दूसरे के साथ आपस में गुँथी हुई और उलझती-टकराती आगे बढ़ती है। अँचल की पूरी गतिशीलता उपन्यास में समाहित करने का प्रयास उपन्यासकार करता है।

आँचलिक उपन्यासकार कई बार अँचल के लोगों की वास्तविक समस्याओं और संघर्षों की बजाए ऐसे बाह्य उपकरणों की तरफ ज्यादा ध्यान देने लगता है जिससे उपन्यास की शोभा तो बढ़ जाती है, लेकिन वह प्रासंगिक नहीं बन पाता।

3.4.4 ऐतिहासिक कथावस्तु

इतिहास भी उपन्यास की कथावस्तु के लिए मुख्य स्रोत रहा है। सभी भाषाओं में इतिहास की घटनाओं, पात्रों और स्थितियों को लेकर उपन्यास लिखने की लंबी और समृद्ध परंपरा रही है। बंगला के उपन्यासकार बंकिमचंद्र के कई महत्वपूर्ण उपन्यास इतिहास की घटनाओं और पात्रों पर ही आधारित हैं। 'दुर्गेशनंदिनी', 'कपाल कुंडला', 'आनंदमठ', आदि उपन्यास ऐतिहासिक कथानकों पर ही आधारित हैं। हिंदी में वृंदावनलाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ही जाने जाते हैं। 'विराटा की पद्मिनी', 'झांसी की रानी', 'मृगनयनी', 'गढ़ कुंडार' आदि उनके द्वारा लिखे गए कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इसी प्रकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक और पौराणिक दोनों तरह के कथानकों पर उपन्यास लिखे हैं। यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, आदि रचनाकारों ने भी कई उपन्यास ऐतिहासिक विषयवस्तु को आधार बनाकर लिखे हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों से तात्पर्य अतीत से संबंधित घटनाओं, चरित्रों और देशकाल को लेकर उपन्यास की रचना करना है। यहाँ इतिहास में वास्तविक इतिहास भी शामिल है और मिथकीय (पौराणिक) इतिहास भी शामिल है। रामायाण, महाभारत, पुराणों या उपनिषदों आदि की कहानियों पर आधारित उपन्यासों को भी ऐतिहासिक उपन्यास के अंतर्गत ही शामिल किया जाएगा यद्यपि इन कथाओं का संबंध न तो अतीत की किसी वास्तविक घटना से होता है और न ही किसी वास्तविक पात्र से। इसके बावजूद ऐसे उपन्यास जीवन के जिस मनोवैज्ञानिक या सांस्कृतिक यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं, उसका महत्व और उसकी प्रासंगिकता बनी रहती है। मराठी के प्रसिद्ध उपन्यासकार वि.स. खांडेकर की रचना 'ययाति' और कन्नड़ के उपन्यासकार भैरप्पा के उपन्यास 'पर्व' का महत्व इसीलिए है। ययाति एक पौराणिक पात्र है और 'पर्व' महाभारत की कथा पर लिखा गया उपन्यास है। कई बार उपन्यासकार इतिहास का प्रयोग रूमानी कथा कहने के लिए भी करते हैं। वृंदावनलाल वर्मा के अधिकांश उपन्यास दरअसल ऐतिहासिक रोमांस कहे जा सकते हैं जबकि हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में तत्कालीन समाज के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में निहित जटिलताओं, तनावों और द्वंद्वों को प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों की प्रासंगिकता ज्यादा स्थायी और ठोस रूप में उभर कर सामने आती है। प्रासंगिक प्रश्नों की प्रेरणा यशपाल के उपन्यासों में ज्यादा स्पष्ट रूप से पहचानी जा सकती है। 'अमिता' और 'दिव्या' उपन्यासों की कथा का महत्व यही है कि वे युद्ध और शांति तथा सांप्रदायिक तनावों से ग्रसित समाज के यथार्थ को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास अतीत के गौरवगान या अतीत की वर्तमान पर पुनर्प्रतिष्ठा के आधार पर स्वीकार्य नहीं बन सकते। ऐतिहासिक उपन्यास का महत्व तभी है जब वे वर्तमान को समझने और बदलने की प्रेरणा दे।

3.4.5 मनोवैज्ञानिक कथावस्तु

उपन्यास की कथावस्तु व्यक्तियों की गतिशीलता के आधार पर निर्मित होती है। व्यक्ति के चरित्र का निर्माण उसके कार्यों से होता है। कार्य का तात्पर्य जो वह करता है और जो वह कहता है। वास्तविक जीवन में हम मनुष्य की कथनी और करनी को तो जान जाते हैं लेकिन

मनुष्य की कथनी और करनी से पहले, दौरान और पश्चात् वह क्या सोचता है, उसको जानना संभव नहीं होता। उपन्यास में उपन्यासकार मनुष्य क्या सोचता है, उसका भी विस्तार से वर्णन करता है। इससे मनष्य के कथन और कर्म को हम ज्यादा बेहतर ढंग से समझ पाते हैं। मनोविज्ञान के विकास ने रचनाकार को यह क्षमता दी है कि वह व्यक्ति की कथनी और करनी के पीछे के वास्तविक कारणों को उजागर कर सके।

पात्रों के मन को टटोलने और उसे विस्तार से चित्रित करने की शुरुआत तो हम प्रेमचंद के उपन्यासों में भी देख सकते हैं। लेकिन व्यक्ति के अंतर्मन की गुत्थियों को कथा के केंद्र में रखकर उपन्यास लिखने का श्रेय जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी को जाता है। जैनेंद्र कुमार ने फ्रायड से प्रेरणा लेते हुए व्यक्ति की कामभावनाओं को समझने और उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न किया है जबकि इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों में पात्र को इस तरह चित्रित किया गया है, मानो ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी मनोचिकित्सक के सामने प्रस्तुत मनोरोग का मामला हो और उपन्यासकार उसी को विस्तार से पाठकों को सामने रख रहा हो। अज्ञेय भी आधुनिक मनुष्य को यौन भावनाओं का पुंज मानते हैं इसलिए स्त्री और पुरुष के यौन जीवन की गुत्थियाँ उनके यहाँ भी प्रमुखता से चित्रित हुई है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि मनोविज्ञान के विकास का लाभ अन्य उपन्यासकारों ने नहीं उठाया। दरअसल पात्रों के चारित्रित विकास को यथार्थवादी ढंग से चित्रित करने में मनोवैज्ञानिकता ने गहरी मदद की है। इससे चरित्र की कई पर्तों को उजागर किया जा सका है। पात्रों के मन, वचन और कर्म में निहित अनेकता को पहचानना और उसके कारणों को समझना आसान हुआ है। मनोवैज्ञानिक पद्धति को उपयोग के कारण चेतन, उपचेतन, अवचेतन-मन के विभिन्न स्तरों, मुक्त चेतना प्रवाह, स्वप्न चित्रों और दिवास्वप्नों को उपन्यास में चित्रित करते हुए पात्रों की विभिन्न मनोदशाओं को कथा विकास में सहायक बनाया जा सका है। वे उपन्यासकार जो मनोविश्लेषण को ही कथा के केंद्र में स्थापित कर देता है, न कि उसे सहायक के रूप में इस्तेमाल करता है, उनके उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक उपन्यास या मनोविश्लेषणवादी उपन्यास की संज्ञा दी जाती है।

कथावस्तु के आधार पर उपन्यासों के वर्गीकरण के और भी कई प्रकार हो सकते हैं। विज्ञान कथाओं पर आधारित उपन्यास इसी तरह का एक वर्गीकरण है यद्यपि हिंदी में विज्ञान कथाओं के लेखन की कोई सुदृढ़ परंपरा नहीं है। इसी तरह बच्चों और किशोरों के लिए उपन्यास लेखन भी न सिर्फ बहुत कम होता है बल्कि उनको पर्याप्त महत्व भी नहीं दिया गया है जबकि बच्चों और किशोरों के लिए उपन्यास लिखना चुनौती भरा काम है।

3.5 चरित्रों के आधार पर

उपन्यास के पात्र उपन्यास की जीवंतता के प्रमाण होते हैं। उपन्यास की कथावस्तु की तरह उसके पात्र भी समाज के किसी भी वर्ग से संबंधित हो सकते हैं। स्त्री-पुरुष, राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, शहरी-ग्रामीणवासी, शिक्षित-अशिक्षित, उच्चवर्ग-मध्यवर्ग, हिंदू-मुसलमान, सवर्ण-दलित। कहने का तात्पर्य यह है कि उपन्यास के पात्र कैसे होंगे यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी कथावस्तु किस तरह की है। 'रंगभूमि' का नायक अंधा भिखारी है। 'उसका बचपन' का केंद्रीय पात्र छोटा बच्चा है। 'निर्मला' की नायिका घेरलू स्त्री है, 'अमिता' की केंद्रीय चरित्र छोटी बच्ची अमिता है। उपन्यास के चरित्र वास्तविक भी हो सकते हैं ('बाणभट्ट की आत्मकथा' का नायक बाणभट्ट), पौराणिक भी हो सकते हैं ('ययाति' का नायक ययाति), काल्पनिक भी ('गोदान' का होरी) जो वास्तविक पात्रों से ज्यादा वास्तविक हों। उपन्यासों का वर्गीकरण पात्रों के आधार पर भी किया जा सकता है। इस भाग में हमने उपन्यासों के चरित्रों के आधार पर होने वाले वर्गीकरण पर प्रकाश डाला गया है।

3.5.1 सामाजिक चरित्र

सामाजिक पात्र वे हैं जिनमें सामाजिकता का तत्व ज्यादा हो। उदाहरण के लिए होरी या सूरदास या बाणभट्ट सामाजिक चरित्र हैं क्योंकि ये निजता से ज्यादा सामाजिकता को ज्यादा महत्व देते हैं जबकि 'शेखर : एक जीवनी' का शेखर, 'सुनीता' की सुनीता, 'नदी के द्वीप' का भुवन आदि सामाजिक पात्र नहीं हैं क्योंकि वे निजता को ज्यादा महत्व देते हैं। स्वयं रचनाकारों ने उनके निजत्व को ज्यादा प्रकाशित किया है। इसका अर्थ यह है कि चरित्र केंद्रित उपन्यास भी सामाजिक हो सकते हैं और शक्तिपरक भी। सामाजिक उपन्यासों के चरित्र किसी-न-किसी सामाजिक प्रकृति के, सामाजिक वर्ग के द्योतक हो सकते हैं। उनके माध्यम से उपन्यासकार सामाजिक समस्याओं को उजागर करता है। होरी एक निम्नवर्गीय किसान है जिसके माध्यम से प्रेमचंद ने किसानों की ऋण समस्या और शोषण के विराट चक्र को उद्घाटित किया है। यहाँ यह बात खासतौर पर ध्यान देने की है कि यदि उपन्यास का केंद्रीय पात्र अपनी सामाजिकता का प्रतिनिधित्व करता है तो अन्य पात्र भी सामाजिकता का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

3.5.2 वैयक्तिक चरित्र

वैयक्तिक पात्रों से तात्पर्य ऐसे पात्रों से हैं जिनका चित्रण करते हुए उपन्यासकार उनकी निजी विशिष्टताओं को ज्यादा उजागर करता है। ये पात्र आमतौर पर शहरी, शिक्षित और मध्यवर्गीय होते हैं और उपन्यासकार के निजी व्यक्तित्व का प्रतिबिंबन उनमें होता है। ऐसे उपन्यास व्यक्ति-प्रधान या चरित्र-प्रधान उपन्यास कहलाते हैं। पात्रों की निजता का दावा दरअसल लेखकीय दृष्टि का परिणाम होता है। कोई भी निजता ऐसी नहीं होती जिसका सामाजिक आधार न होता हो। लेकिन जहाँ उपन्यासकार पात्र सोचे-समझे ढंग से पात्रों की सामाजिकता को नज़रअंदाज करता है, ऐसे उपन्यास व्यक्ति प्रधान उपन्यास या व्यक्तिवादी उपन्यास कहलाते हैं। अज्ञेय, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी, के उपन्यासों पर इस व्यक्तिवाद का गहरा असर देख सकते हैं। व्यक्तिपरक उपन्यासों की दूसरी विशेषता यह होती है कि उनके चरित्र यौन भावनाओं के प्रति अधिक सजग और आग्रही होते हैं। ऐसे उपन्यासों में स्त्री-पुरुष भावनाओं और संबंधों को खासतौर पर महत्व दिया जाता है। जैनेंद्र के उपन्यास 'सुनीता', अज्ञेय के 'नदी के द्वीप', निर्मल वर्मा के 'वे दिन', मोहन राकेश के 'अँधेरे बंद कमरे', श्रीकांत वर्मा के 'दूसरी बार' में स्त्री-पुरुष संबंधों को ही कथा के केंद्र में रखा गया है।

3.5.3 प्रातिनिधिक चरित्र

प्रातिनिधिक चरित्र का तात्पर्य ऐसे पात्रों से हैं, जो किसी प्रवृत्ति या वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हो। आमतौर पर सामाजिकता पर बल देने वाले उपन्यासकार अपने उपन्यासों में ऐसे ही चरित्र गढ़ते हैं जो टाइप्ड होते हैं। प्रातिनिधिक चरित्रों का सृजन औपन्यासिक रचनात्मकता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। यदि होरी के चरित्र से पाठकों को भारतीय किसान की झलक मिलती है, तो यह उपन्यासकार की बहुत बड़ी कामयाबी है। उपन्यासों में प्रातिनिधिक चरित्रों के सृजन से हमें विभिन्न वर्गों और समुदायों के लोगों के साथ तादात्म्य का अवसर मिलता है। 'निर्मला' की पीड़ा उन जैसी हजारों-लाखों स्त्रियों की पीड़ा का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन यदि शेखर का दुख सिर्फ शेखर का दुख है, तो पाठक की न तो उससे सहानुभूति होगी और न वह उस चरित्र से अपना तादात्म्य कर पाएगा। लेकिन इसके साथ यह भी आवश्यक है कि चरित्र इतना अधिक टाइप्ड न हो जाए कि वह यांत्रिक और उपन्यासकार की कठपुतली मात्र लगे। प्रातिनिधिक चरित्रों में प्रातिनिधिकता के साथ-साथ अपनी निजता भी होनी चाहिए। उसमें वर्गीय चेतना के साथ-साथ व्यक्ति-चेतना का भी पर्याप्त अंश होना चाहिए। ऐसा होकर ही प्रातिनिधिक चरित्रों वाले उपन्यास अपने समाज और समय का रूपक बनने की क्षमता हासिल कर पाते हैं।

3.5.4 प्रतीकात्मक चरित्र

प्रतीकात्मक चरित्र बनने के लिए प्रातिनिधकता का गुण पात्रों में होना आवश्यक है। वैसे तो प्रत्येक चरित्र लेखकीय विचारों और भावनाओं का प्रतिनिधित्व किसी न किसी रूप में करता

है, लेकिन वह प्रतीकात्मकता का उत्कर्ष तभी हासिल कर पाता है जब उसमें एक तरह का अमरत्व का तत्व समाहित हो जाता है। यदि उपन्यासकार रचना के आरंभ में ही यह सोचकर चरित्र की रचना करता है कि उसे वह इस या उस धारणा, प्रवृत्ति, भाव, विचार के प्रतीक के रूप में निर्मित करेंगा तो इस बात का निर्वाह करने के लिए उसे चरित्रों के स्वाभाविक विकास को अवरुद्ध करना पड़ेगा। इसका असर उपन्यास की कथावस्तु के विकास पर पड़ेगा और बहुत मुमकिन है कि वह उपन्यास प्रभावशाली न बन पाए। ज्यादा बेहतर स्थिति वह होती है जब उपन्यास पाठकों के हाथ में पहुँचने के बाद, पाठकों को यह महसूस हो कि इस उपन्यास के चरित्र अपनी स्वाभाविक देशकाल की सीमाओं को लांघकर प्रतीकात्मकता की हद में पहुँच रहे हैं। प्रतीकात्मकता दरअसल काव्य का गुण है और उपन्यास जैसी महाकाव्यात्मक विधा में प्रतीकात्मकता को रचने की कोशिश आमतौर पर कामयाब नहीं हो पाती। नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' जैसे उपन्यास कम है जहाँ बट का वृक्ष परंपरा का प्रतीक बन उपन्यास में चरित्र के रूप में मौजूद होता है।

3.5.5 मिथकीय चरित्र

मिथकीय चरित्र आसानी से प्रतीकात्मक हो जाते हैं। मिथकीय कथाओं को लेकर रचे गए उपन्यास की प्रासंगिकता उन चरित्रों की प्रतीकातमकता में ही निहित होती है। ययाति एक पौराणिक चरित्र के रूप में प्रासंगिक नहीं है और उस कथा की प्रासंगिकता तो बिलकुल भी नहीं है जो अविश्वसनीय बातों पर टिकी हो। लेकिन वही कथा और चरित्र अपने प्रतीकात्मक अर्थ में प्रासंगिक भी हो जाते हैं और महत्वपूर्ण भी।

पौराणिक कथाएँ और चरित्र सिर्फ उपन्यास विधा में ही नहीं कविता, नाटक और कहानी के लिए भी रचनात्मक ऊर्जा के स्रोत रहे हैं। लेकिन कई बार मिथकीय कथाओं और चरित्रों पर आधुनिक युग को इस तरह थोप दिया जाता है कि वह बहुत विश्वसनीय नहीं लगता। नरेंद्र कोहली के उपन्यासों की सबसे बड़ी सीमा यही है। यही बात भगवान सिंह के उपन्यास 'अपने अपने राम' पर भी कुछ हद तक लागू होती है। रामकथा की अपनी व्याख्या को थोपने के चक्कर में एक ऐसे षड्यंत्रकारी कथा का रूप उसमें दे दिया गया है जो उस युग के यथार्थ से बिलकुल मेल नहीं खाता। इसके विपरीत हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' अधिक विश्वसनीय ढंग से पौराणिकता की सीमाओं को लांघकर वर्तमान में प्रासंगिक बनकर उपस्थित होते हैं।

3.6 शैली के आधार पर

उपन्यासों का वर्गीकरण रचना-शैलियों के आधार पर भी किया जा सकता है। उपन्यास लिखने की कोई एक शैली नहीं है। जब से उपन्यास लिखे जाने आरंभ हुए तब से उपन्यास की विभिन्न शैलियों का विकास भी होता आया है। आगे आने वाले समय में उपन्यास और भी नई शैलियों में लिखे जाएँगे, इसकी संभावना इस विधा में मौजूद है। कुछ रचनाकार और आलोचक यद्यपि उपन्यास की मृत्यु की घोषणा कर चुके हैं, लेकिन आज भी साहित्य की जिस विधा में सबसे जीवंत और सबसे ऊर्जावान लेखन हो रहा है तो वह उपन्यास विधा में ही। हाँ, यह ज़रूर है कि लंबे समय तक उपन्यास सृजन का केंद्र यूरोप और अमरीका रहा, लेकिन अब तीसरी दुनिया के देशों, दक्षिण अमरीका, अफ्रीका और एशिया के देशों में उत्कृष्ट कोटि के उपन्यास लिखे जा रहे हैं और उनमें नए-नए प्रयोग भी किए जा रहे हैं।

गद्य की समस्त विधाओं का प्रयोग उपन्यास लेखन में किया जा सकता है। एक ही उपन्यास में कई शैलियों का भी प्रयोग उपन्यास लेखन में किया जाता रहा है। लेकिन शैली की सफलता उसकी नवीनता या उसकी प्रयोगशीलता में नहीं वरन् कथावस्तु के साथ उसके सामंजस्य में निहित है। क्या 'गोदान', 'शेखर : एक जीवनी' की शैली में लिखा जा सकता था और क्या 'वे दिन' की शैली में 'तमस' प्रभावशाली बन पाता। किस तरह की कथावस्तु

के लिए कौन-सी शैली उपुयक्त है, यह उपन्यासकार ही तय करता है। लेकिन वह यह भी तय करता है कि एक रचनाकार के रूप में उसके लिए कौन-सी शैली में लिखना ज्यादा सहज और संगतिपूर्ण है।

3.6.1 वर्णनात्मक शैली

उपन्यास लेखन की यह शैली सर्वाधिक प्रचलित है। आमतौर पर घटना प्रधान उपन्यास इसी शैली में लिखे जाते हैं। वर्णन की शैली में लिखे गए उपन्यास में यह सुविधा रहती है कि लेखक घटनाओं, स्थितियों, चरित्रों और देशकाल का वर्णन अपने मन-माफिक कर सकता है। इस शैली में लेखक जहाँ चाहे स्वयं प्रवेश कर सकता है और अपनी तरफ से टिप्पणी दे सकता है। यह शैली इतनी अधिक प्रचलित है कि इसका सर्जनात्मक उपयोग करना आसान नहीं है। इसमें सामान्य स्तर का उपन्यास भी लिखा जा सकता है और 'गोदान', 'झूठा सच' जैसे श्रेष्ठ उपन्यास भी लिखे जा सकते हैं। वर्णनात्मक शैली में भी कई तरह के प्रयोग किए जा सकते हैं जिससे इसमें शैलीगत नवीनता बनी रहती है।

3.6.2 व्यंग्यात्मक शैली

व्यंग्यात्मक शैली में उपन्यास लेखन अधिक चुनौती भरा और दुष्कर कार्य है। इस शैली का प्रयोग करने वाला लेखक पात्रों का चित्रण व्यंग्यात्मक ढंग से करता है। स्थितियों और घटनाओं में भी व्यंग्य की प्रधानता रहती है। व्यंग्य का मुख्य औजार तो भाषा रहती है लेकिन स्थितियों और घटनाओं का संयोजन कुल इस तरह किया जाता है कि व्यंग्य थोपा हुआ नहीं लगता। व्यंग्य का प्रयोग लेखक हास्य पैदा करने के लिए नहीं करता बल्कि सामाजिक अंतर्विरोधों और स्थितियों में निहित विडंबनाओं को उजागर करने के लिए करता है। हिंदी में व्यंग्य प्रधान उपन्यास लिखने की कोई सुदृढ़ परंपरा नहीं है लेकिन श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'राग दरबारी' इस श्रेणी की क्लासिक रचना मानी जा सकती है। हरिशंकर परसाई का लघु उपन्यास 'रानी नागफनी की कहानी' भी व्यंग्य प्रधान उपन्यास का उत्कृष्ट उदहारण है। इंशाअल्ला खाँ की प्रसिद्ध कहानी 'रानी केतकी की कहानी' की शैली का प्रयोग इस उपन्यास में व्यंग्य पैदा करने के लिए किया गया है। व्यंग्य का प्रयोग संपूर्ण रचना में हो यह आवश्यक नहीं है लेखक आवश्यकतानुसार भी रचना में व्यंग्य का प्रयोग कर सकता है। 'गोदान' में व्यंग्य के ऐसे कई प्रसंग सामाजिक अंतर्विरोधों को उजागर करने के लिए लाए गए हैं।

3.6.3 आत्मकथात्मक शैली

वर्णन शैली में लिखे गए उपन्यासों के बाद आत्मकथात्मक शैली उपन्यास लेखन की लोकप्रिय शैली है। आत्मकथात्मक शैली का तात्पर्य है कि उपन्यास का केंद्रीय पात्र अपनी कहानी खुद कहता है। इस शैली में लेखक एक व्यक्ति की नज़र से उपन्यास में वर्णित क्रियाकलापों और अन्य चरित्रों का अवलोकन करता है। इस तरह के उपन्यास चरित्र प्रधान होते हैं। आत्मकथात्मक शैली के उपन्यास पाठक के साथ अधिक आत्मीयता स्थापित कर पाते हैं। आत्मकथात्मक उपन्यास की यह सीमा होती है कि उसमें 'मैं' के अनुभव के बाहर जो कुछ भी घटित होता है, वह उपन्यास के भी बाहर ही रह जाता है। लेकिन किसी पात्र के कथन द्वारा या किसी ऐसी विधि से जो यथार्थपरक हो उनका संदर्भ तो आ सकता है। आत्मकथात्मक उपन्यास की सीमा ही उसकी शक्ति है क्योंकि इससे अन्य पात्रों और अन्य स्थितियों के बारे में तब तक कोई जानकारी नहीं मिलती जब तक कि उपन्यास के नैरेटर के सामने नहीं आती। इससे उपन्यास में रहस्य और रोचकता का तत्व समाहित हो जाता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में बाणभट्ट भट्टिनी और निउनिया के बारे में क्या सोचता है, यह तो पाठक को बराबर मालूम पड़ता रहता है लेकिन भट्टिनी बाणभट्ट के बारे में क्या सोचती है, यह बाण कल्पना ही करता रहता है। इससे बाण की बेचैनी, उलझन और भट्टिनी के प्रति उसके गहरे अनुराग का पता लगता है। आत्मकथात्मक उपन्यास पूर्वदीप्ति शैली में भी लिखे

जाते हैं, जिसमें नैरेटर अतीत को याद करते हुए पाठकों के सम्मुख एक-एक कर अपनी जीवन गाथा के पन्ने खोलता जाता है।

3.6.4 जीवनीपरक शैली

जीवनीपरक उपन्यास शैली आत्मकथात्मक उपन्यास से लगभग मिलती-जुलती शैली है। यहाँ कथावाचक अपनी कथा के केंद्र में एक ही पात्र को रखता है और उसी की जीवनगाथा को प्रस्तुत करता है। जीवनीपरक उपन्यास में उपन्यासकार को यह छूट मिली होती है कि वह अपने कथानायक के अलावा अन्य पात्रों, अन्य स्थितियों और अन्य क्रियाकलापों का वर्णन स्वतंत्र रूप से कर सकता है। लेकिन इन सबका मकसद कथानायक के जीवन से संबंधित किसी पहलू को उजागर करना होता है। 'शेखर : एक जीवनी' में अज्ञेय जब भी कथा को शेखर से दूर ले जाते हैं तो इसीलिए ताकि शेखर के जीवन के कुछ अनजाने पहलू उजागर हो सकें। जीवनीपरक शैली में यह सुविधा भी रहती है कि लेखक नायक के बहाने उसके आसपास के परिवेश और पात्रों के विश्लेषण को प्रस्तुत कर सके। जीवनीपरक उपन्यास में कथा का विस्तार मुख्य चरित्र के बचपन से लेकर प्रायः जीवन के अंत तक रहता है। ऐसे उपन्यासों में कथा में एक सूत्रबद्धता आवश्यक नहीं है बल्कि सारे कथासूत्र मुख्य नायक के जीवन की डोर में बंधे होते हैं। लेखक को इस बात का ध्यान रखना होता है कि कथा मुख्य चरित्र के जीवन के बाहर ऐसे क्षेत्रों में न चली जाए जिनका मुख्य चरित्र से कोई संबंध ही न हो।

3.6.5 रूपक प्रधान शैली

श्रेष्ठ उपन्यास एक तरह की एलिगरी में परिवर्तित हो जाते हैं। जब 'गोदान' को किसान जीवन का महाकाव्य कहा जाता है तो इसका तात्पर्य यही है कि वह एलिगरी में बदल गया है। एक ऐसे रूपक में जो किसी एक किसान की नहीं, किस एक क्षेत्र के किसान की नहीं बल्कि उस दौर के भारतीय किसान की गाथा बन जाता है। उपन्यास विधा में यह क्षमता अंतर्निहित है कि वह अपने को राष्ट्रीय रूपक में रूपांतरित कर ले। 'मैला आँचल', 'राग दरबारी', 'महाभोज' जैसे कई उपन्यास अपनी अर्थव्याप्ति में राष्ट्रीय रूपक होने का आभास देने लगते हैं। उपन्यासकार सोचकर रूपक तैयार नहीं करता। यह तो उपन्यास की आंतरिक क्षमता होती है कि वह अपने को रूपक के रूप में मनवा लेता है। राष्ट्रीय रूपक होने के लिए उपन्यास की कथावस्तु का फलक व्यापक, चरित्र उदार और संघर्षधर्मी, दृष्टि मानवतावादी होना ज़रूरी है। रवींद्रनाथ ठाकुर के उपन्यास 'गोरा' नवजागरण युग का राष्ट्रीय रूपक इन्हीं विशेषताओं के कारण माना जाता है। कई बार तो कुछ उपन्यास एलिगरी में अपने पूरे समय का प्रतिनिधित्व करने लगता है। अल्बेयर कामू का उपन्यास 'प्लेग' या लेव तॉल्सतॉय का उपन्यास 'युद्ध और शांति' या मक्सीम गोर्की का उपन्यास 'मदर', या अर्नेस्ट हेमिंग्वे का उपन्यास 'ओल्डमेन एंड द सी' इसी तरह के उपन्यास हैं जो अपने समाज और समय की सीमाओं को लांघकर संपूर्ण मानव जाति के लिए मूल्यवान रूपक बन गए हैं।

उपन्यास लेखन की अन्य कई विधियाँ हो सकती हैं जिसके आधार पर उपन्यास का वर्गीकरण किया जा सकता है। यात्रा वृत्तांत के रूप में जैसे रॉबिन्सन क्रूसो, डायरी के रूप में जैसे डॉ. देवराज का प्रसिद्ध उपन्यास 'अजय की डायरी', आदि में क्रमशः यात्रा वृत्तांत और डायरी शैली का प्रयोग किया गया है।

3.7 जीवन दृष्टि के आधार पर

उपन्यास लेखन पर उपन्यासकार की जीवन दृष्टि का गहरा प्रभाव रहता है। जीवन दृष्टि में कला दृष्टि भी शामिल होती है। इसलिए इस आधार पर उपन्यासों के वर्गीकरण पर विचार करते हुए उनकी कला-दृष्टि पर भी टिप्पणी की गई है। जीवन-दृष्टि से तात्पर्य लेखक की वैचारिक दृष्टि से है। प्रेमचंद के युग में आदर्शवाद और यथार्थवाद की बहस चल रही थी।

प्रगतिवाद के समय में यथार्थवाद को सर्वस्वीकृति मिल गई लेकिन यथार्थवाद के कई रूपों को लेकर बहस चलती रही–आलोचनात्मक यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद के बीच की बहस ने उपन्यासों के सृजन को ही नहीं आलोचना को भी दूर तक प्रभावित किया। स्वातंत्र्योत्तर दौर में आधुनिकतावादी जीवन दृष्टि का प्रभाव नए उभरते लेखकों पर देखा गया। कई लेखक अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन के प्रभाव में आए। अस्सी के बाद के दशक में आधुनिकता का स्थान उत्तर आधुनिकता ने ले लिया। आजकल कई लेखकों की रचनाओं के संदर्भ में उत्तर आधुनिकता की चर्चा की जाने लगी है। जीवन-दृष्टि के इस प्रभाव पर हम विस्तृत उल्लेख इसी खंड की चौथी इकाई में करेंगे यहाँ सिर्फ वर्गीकरण की दृष्टि से इन पर संक्षिप्त टिप्पणी की गई है।

3.7.1 भाववादी-आदर्शवादी दृष्टि

अंग्रेजी के शब्द आइडयालिज्म का अनुवाद हिंदी में भाववाद ओर आदर्शवाद दोनों रूपों में किया जाता है। प्रेमचंद इसका अर्थ आदर्शवाद के रूप में लेते हैं। आदर्शवाद से तात्पर्य उच्च जीवन मूल्यों के अनुसार जीवनयापन करना है। आदर्शवाद की व्याख्या करते हुए प्रेमचंद कहते हैं, 'Idealism हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है, जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ और वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं। यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार कुशल नहीं होते। उनकी सरलता उन्हें व्यावहारिक विषयों में धोखा देती है, लेकिन काइयांपन से ऊबे हुए प्राणियों को ऐसे सरल, ऐसे व्यावहारिक ज्ञानविहीन चरित्रों के दर्शन से एक विशेष आनंद होता है।' आदर्शवाद और यथार्थवाद की तुलना करते हुए वे लिखते हैं, 'Realism यदि हमारी आँखे खोल देता है, तो Idealism हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है।' स्वयं प्रेमचंद अपने लिए न आदर्शवाद को उपयुक्त मानते हैं न यथार्थवाद को। उनकी दृष्टि में वे ही उपन्यास उच्चकोटि के हैं 'जहाँ Realism और Idealism का समन्वय हो गया हो, उसे आप Idalistic Realism कह सकते हैं। Idea को सजीव बनाने के लिए Realism का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है।' प्रेमचंद के आरंभिक उपन्यासों पर आदर्शवाद का ज्यादा असर है जबकि 'गोदान' तक आते-आते वे आदर्शवादी प्रभाव से काफी हद तक मुक्त हो जाते हैं। हिंदी लेखकों पर गांधीवादी जीवन-दृष्टि का भी गहरा असर रहा है जा एक आदर्शवादी जीवन दृष्टि है। प्रेमचंद के अलावा बाद में जैनेंद्र कुमार, विष्णु प्रभाकर, फणीश्वरनाथ रेणु आदि पर इसका असर देख सकते हैं।

3.7.2 यथार्थवादी दृष्टि

यथार्थवाद को कई बार प्रकृतवाद से एकमेक कार दिया जाता है। प्रकृतिवादी जीवन जैसा है, उसे ठीक उसी रूप में चित्रित करता है। प्रेमचंद ने यथार्थवाद की जो विशेषताएँ बताई हैं वह दरअसल प्रकृतिवाद की विशेषताएँ हैं। वे लिखते हैं, 'Realist रित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ, नग्न रूप में रख देता है, उसे इससे कुछ परिणाम नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है, या कुचरित्रता का परिणम अच्छा, उसके चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते हैं और चूंकि संसार में सदैव नेकी का फल नेक और बदी का फल बद नहीं होता बल्कि इसके विपरीत हुआ करता है, नेक आदमी धक्के खाते हैं, यातनाएँ सहते हैं, मुसीबतें झेलते हैं, अपमानित होते हैं, उनकी नेकी का फल उलटा मिलता है, बुरे आदमी चैन करते हैं, नामवर होते हैं, यशस्वी बनते हैं, उनकी बदी का फल उलटा मिलता है।' प्रेमचंद की उक्त व्याख्या से ही स्पष्ट है कि वे यथार्थवाद को प्रकृतवाद के रूप में समझ रहे हैं। यथार्थवाद में आदर्शों का निषेध नहीं है बल्कि भाववाद का निषेध है। भाववाद का निषेध प्रेमचंद में भी है। आदर्श और यथार्थ में संघर्ष नहीं है वरन् प्रश्न यह है कि किस तरह के आदर्श समाज के लिए उपयुक्त हैं। गांधीवादी आदर्शवाद व्यक्ति के हृदय परिवर्तन पर बल देता है जबकि मार्क्सवादी आदर्शों से प्रेरित रचनाकार समाज के आमूल-चूल परिवर्तन पर बल देता है। यथार्थवादी रचनाकार समाज के यथार्थ पर ही दृष्टि नहीं रखता बल्कि अपनी रचना में यथार्थ को वर्गीय दृष्टि से देखता है, और समाज में चल रहे वर्ग संघर्ष को अपनी रचना का आधार बनाता है। यथार्थ को वर्गीय दृष्टि से देखने और

वर्ग संघर्ष को कथा का आधार बनाने का अर्थ यह नहीं है कि यथार्थवादी रचनाकार समाज के अन्य अंतर्विरोधों की अनदेखी करता है बल्कि उसकी वर्गीय दृष्टि अन्य अंतर्विरोधों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने में सहायक होती है।

यथार्थवाद ने उपन्यास की संरचना पर कई तरह से प्रभाव डाला है। अपने आरंभिक रूप में यथार्थवाद के प्रभाव में उपन्यासकारों ने उपन्यासों में समाज के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि को ज्यादा तरज़ीह दी, उन्होंने सामाजिक परिवर्तन पर तो जोर दिया, लेकिन वे इस बारे में स्पष्ट नहीं थे कि परिवर्तन के बाद समाज का स्वरूप क्या होगा। ऐसी कृतियों को आलोचनात्मक यथार्थवाद के अंतर्गत परिगणित किया गया। लेकिन सोवियत संघ में समाजवाद की स्थापना के बाद समाजवाद एक स्वप्न नहीं सच्चाई बन गया था। इसलिए रचनाकारों के एक हिस्से ने समाजवादी आदर्शों से अनुप्रेरित रचनाओं को ही अपना आदर्श घोषित किया। ऐसी रचनाओं को समाजवादी यथार्थवाद के अंतर्गत माना गया। आज जब सोवियत संघ का विघटन हो गया है। समाजवाद का स्वप्न अब लेखकों के आदर्श के रूप में इस तरह लोकप्रिय नहीं रहा, फिर भी यथार्थवाद का प्रभाव साहित्य रचना में कम नहीं हुआ। ऐसे जटिल दौर में, जब बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों के लिए राष्ट्रों के हितों को, अपार जनसमूह के हितों को कुरबान किया जा रहा है, जब साम्राज्यवाद का सिंहनाद चारों ओर गूंज रहा है, यथार्थवाद भी नए रूप में सामने आ रहा है। जादूई यथार्थवाद यथार्थवाद का नवीनतम संस्करण है जो तीसरी दुनिया के रचनाकारों के बीच लोकप्रिय है।

3.7.3 आधुनिकतावादी और उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टि

यथार्थवादी लेखक प्रायः मार्क्सवाद के प्रभाव में थे लेकिन जो लेखक मार्क्सवाद को अपनी रचनाशीलता के लिए उपयुक्त नहीं मानते थे, उनमें से ज्यादातर आधुनिकतावाद के प्रभाव में थे। आधुनिकतावाद प्रतिगामी विचारधारा नहीं है। वह समाज को एक आधुनिक, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष स्वरूप देने की पक्षधर विचारधारा है यद्यपि इसका मार्क्सवाद से विरोध है। वह व्यक्ति-स्वातंत्र्य का समर्थन करता है जबकि समाजवादी समाजों में व्यक्ति-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर किए गए हमलों को आधुनिकतावादी लेखकों ने अपनी आलोचना का आधार बनाया। हिंदी में अज्ञेय, धर्मवीर, भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, मोहन राकेश, उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी, कृष्णबलदेव वैद आदि लेखकों पर आधुनिकतावादी दृष्टि का प्रभाव है। इन लेखकों ने मुख्य रूप से महानगरीय, बाहरी और कस्बाई मध्यवर्ग के जीवन को आधार बनाकर लेखन किया। इनके उपन्यासों में नगरीय जीवन से उत्पन्न भावनाओं का विशेष रूप से चित्रण मिलता है। व्यक्तिवादी नज़रिए के कारण अकेलापन, संत्रास, अजनबीपन, घुटन, जैसे भावों का ही प्राबल्य इनके लेखन में मिलता है। स्त्री-पुरुष संबंधों के विभिन्न रूप और स्तर भी इनके उपन्यासों का प्रमुख विषय रहा है।

आधुनिकतावाद के बाद हिंदी लेखकों के एक समूह पर आजकल उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टि का प्रभाव देखा जा सकता है। यह आधुनिकता और प्रगतिशीलता का द्योतक भी है। यद्यपि हिंदी लेखकों में यह प्रकृति बहुत अधिक प्रभावी नहीं है फिर भी मनोहरश्याम जोशी, कृष्ण बलदेव वैद, विनोदकुमार शुक्ल आदि कि उपन्यासों के संदर्भ में उत्तर आधुनिकता की चर्चा होने लगी है। उत्तर आधुनिकता के इस दौर की एक और पहचान यह है कि इसमे हाशिए के लोगों वर्गों, समूहों, समुदायों खासकर दलित, स्त्री और अल्पसंख्यक समुदाय के जीवन को उपन्यासों का विषय बनाना शामिल है। यह उत्तर आधुनिक दौर का सकारात्मक पहलू है।

3.8 सारांश

उपन्यास के सैद्धांतिक पक्ष के विवेचन का महत्वपूर्ण पहलू उपन्यासों का वर्गीकरण है। उपन्यासों के वर्गीकरण का आधार उपन्यास की रचना के उद्देश्य, कथावस्तु के स्वरूप,

चरित्रों के प्रकार, शैली की विविधता और जीवन-दृष्टि के अंतर के आधार पर किया जा सकता है।

उपन्यास लेखन का उद्देश्य राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक हो सकता है। इस कारण उपन्यास का वर्गीकरण राजनीतिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, सांस्कृतिक उपन्यास और साहित्यिक उपन्यास के रूप में किया जा सकता है।

उपन्यास का वर्गीकरण कथावस्तु की भिन्नता के आधार पर भी किया जा सकता है। कथावस्तु घटना प्रधान, सामाजिक, आँचलिक ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, विज्ञानपरक आदि हो सकती है। इसके आधार पर उपन्यास का वर्गीकरण जासूसी, तिलस्मी, सामाजिक, आँचलिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और विज्ञानपरक किया जा सकता है।

उपन्यास का वर्गीकरण चरित्रों के आधार पर भी किया जाता है। उपन्यास के पात्र सामाजिक, व्यक्तिवादी, प्रातिनिधिक, प्रतीकात्मक और मिथकीय हो सकते हैं इसके आधार पर उपन्यास सामाजिक, व्यक्तिवादी, प्रातिनिधिक, मिथकीय और प्रतीकवादी कहे जा सकते हैं।

उपन्यास विभिन्न शैलियों में लिखे जा सकते हैं जिसके आधार पर उन्हें वर्णनात्मक, व्यंग्य प्रधान, आत्मकथात्मक, जीवनीपरक, रूपक प्रधान कहा जा सकता हे।

जीवन-दृष्टि और कला-दृष्टि के आधार पर उपन्यास को आदर्शवादी, भाववादी, यथार्थवादी, आधुनिकतावादी, प्रगतिवादी, उत्तर आधुनिकतावादी, अस्तित्ववादी आदि कहे जा सकते हैं।

अभ्यास

1. उपन्यासों के वर्गीकरण के विभिन्न आधारों का उल्लेख कीजिए।
2. कथावस्तु के आधार पर उपन्यास के विभिन्न प्रकारों का विवेचन कीजिए।
3. उपन्यासों की विभिन्न शैलियों का उल्लेख करते हुए उपन्यास का वर्गीकरण कीजिए।